© 2018 IJSRST | Volume 4 | Issue 2 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X
Themed Section: Science and Technology

शब्द प्रमाण

डॉ वरूण नाथ तिवारी
दर्शनशास्त्र विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद

शब्द प्रमाण को स्वतन्त्र प्रमाण मानने के विषय में जहाँ एक ओर न्याय, मीमांसा और वेदान्त दर्शन शब्द को स्वतन्त्र प्रमाण स्वीकार करते हैं वहीं दूसरी ओर चार्वाक, वैशेषिक और बौद्ध शब्द प्रमाण को स्वीकार नहीं करते हैं। व्युत्पत्तिपरक दृष्टि से 'शब्द' का अर्थ ध्वनि (शब्दयति) होता है। सामान्यतः शब्द और पद को पर्यायवाची माना जाता है। वैयाकरण आचार्यों ने सुप् तिङ्न्त विभक्ति युक्त शब्द को पद कहा है। 'शब्द' भी ज्ञान के अन्य साधनों की भाँति ज्ञान प्राप्ति का एक यथार्थ और प्रामाणिक साधन है। प्रस्तुत अध्याय में शब्द का यही पक्ष विवेचन का केन्द्र बिन्दु है। सामान्यतः ऐसे पदों के समूह को वाक्य कहते हैं जो उच्चरित, परस्पर साकांक्ष, परस्पर अन्वययोग्य अर्थों के प्रतिपादक तथा सन्निहित होते हैं। यथार्थ उपदेश करने वाले व्यक्ति के द्वारा प्रयुक्त होने पर ऐसे ही वाक्य शब्द प्रमाण कहे जाते हैं–' 'आप्त वाक्यं शब्दः आप्तस्तु यथाभूतस्यार्थस्यो पदेष्य पुरूषः। वाक्यं त्वाकांक्षायोग्यतासन्निधिमतां पदानां समूहः।'[1] अन्य प्रमाणों के समान शब्द प्रमाण के लक्षण के बारे में भी विभिन्न मत पाये जाते हैं।

शब्द का लक्षण

जैन दर्शन में श्रुत ज्ञान या शब्द ज्ञान को आगम कहा गया है। **उमास्वामी** के अनुसार यथार्थ का अभिधान ही शब्द है– 'यथार्थाभिधानं शब्दः[2] **सिंहसेन दिवाकर, माणिक्य नन्दी, देवसुरि, चन्द्रप्रभा, यशोविजय** आदि ने शब्द प्रमाण के लक्षण में 'आत्म शब्द' का भी समावेश किया है।[3]

न्याय दर्शन में शब्द को स्वर्तन्त्र प्रमाण मानते हुए इसे यथार्थ ज्ञान का साधन माना गया है। शाब्द प्रमा की प्राप्ति जिस साधन से होती है उसे शब्द प्रमाण कहते हैं। शब्दों एवं वाक्यों को सुनने से वस्तुओं का जो यथार्थ ज्ञान होता है उसे 'शब्द ज्ञान' कहते हैं। सभी शब्द ज्ञान यथार्थ नहीं होते। शब्द प्रमाण तभी होता है जब इसके द्वारा यथार्थ ज्ञान मिलता है। केवल आप्त या विश्वसनीय पुरूष के वाक्य ही प्रमाण होते हैं।[4] महर्षि गौतम के अनुसार 'आप्त का उपदेश ही शब्द है।'[5] आप्त पुरूष से तात्पर्य उस पुरूष से भी है जो किसी

क्षेत्र–विशेष का विशेषज्ञ हो। वात्स्यायन के अनुसार वस्तुओं का साक्षात् ज्ञान कर उनके यथार्थ रूप में दूसरों को बताने वाले (जो वस्तु जैसी है, उसको वैसी ही बताने वाले) पुरूष के उपदेश को शब्द कहा जाता है। वस्तुओं का साक्षात् ज्ञान है आप्ति और आप्ति में जो प्रवृत्ति को वह आप्त कहलाता है। आप्तता जाति विशेष पर निर्भर नहीं है। **उद्योतकर** के अनुसार इन्द्रियों से सम्बद्ध या असम्बद्ध अर्थों के प्रसंग में शब्द का प्रयोग करके जो प्रतिपत्ति (बोध) होती है, वह शब्द प्रमाण जन्य ही जयन्त शब्द की परिभाषा में आप्त और उपदेश को आवश्यक बताया है।

नव्य–नैयायिक गंगेश के मतानुसार वाक्यार्थ–ज्ञान ही शब्द प्रमाण है।[6] केशव मिश्र के अनुसार आप्त वाक्य ही शब्द प्रमाण है।[7] **अन्नभट्ट** भी मानते हैं कि आप्तवाक्य को ही शब्द प्रमाण माना है।[8] इस प्रकार प्राचीन नैयायिकों ने आप्त के उपदेश को ही शब्द प्रमाण माना है।

शब्द प्रमाण के बारे में **नव्य नैयायिकों** का मत अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के किंचित् भिन्न है। गंगेय तथा उनके अनुयायियों ने आप्तता के विचार को अस्वाभाविक मानकर छोड़ दिया है। इसके अनुसार वाक्यार्थ ज्ञान ही शब्द प्रमाण है। वाक्यार्थ ज्ञान का अर्थ है– 'वाक्य के अन्तर्गत पद समूह का स्मरणात्मक ज्ञान।' **केशव मिश्र तथा अन्नभट्ट** जैसे परवर्ती न्यायाचार्यों ने भी शब्द प्रमाण की परम्परागत परिभाषा में कुछ परिवर्तन करते हुए 'उपदेश' के स्थान पर 'वाक्य' का प्रयोग करके आप्त वाक्य को शब्द प्रमाण माना है।[9] नैयायिकों के अनुसार शब्द प्रमाण होने के लिए वाक्य का अर्थ पूर्ण एवं विशेष ढंग से क्रमबद्ध होना आवश्यक है। प्राचीन नैयायिकों के अनुसार अर्थपूर्ण वाक्य के लिए आकांक्षा, योग्यता एवं सन्निधि की आवश्यकता होती है, जबकि नव्य नैयायिक उसके लिए तात्पर्य ज्ञान को भी आवश्यक मानते हैं।

शब्द प्रमाण की परिभाषा के संदर्भ में सांख्यों व नैयायिकों में 'आप्त' शब्द की व्याख्या को लेकर कुछ मतभेद है। महर्षि कपिल के अनुसार 'आप्तोपदेश' शब्द है, लेकिन आप्त का अर्थ है आप्ति से युक्त ओर आप्ति का अर्थ है योग्यता। उपदेश का अर्थ है– यथाभूत पदार्थ का निर्दोष कथन। इस प्रकार सुदृढ़ प्रमाणों के द्वारा पदार्थ का अवधारण (निश्चयात्मक ज्ञान) कराने वाला आप्त कहा जाता है और जब वह अपने अनुभव के अनुसार किसी पदार्थ के वास्तविक स्वरूप का वर्णन करता है, तो उस समय के कथन का शब्द प्रमाण कहते हैं।

ईश्वरकृष्ण के अनुसार विश्वसनीय वचन ही आप्तवाक्य है– आप्तश्रुतिराप्तवचनं तुः।[10] इसकी व्याख्या करते हुए वाचस्पति मिश्र ने कहा आप्त शब्द का अर्थ है– प्राप्त या युक्त (यथार्थ)। इस प्रकार जो श्रुति आप्त है, वह आप्तश्रुति है। श्रुति का अर्थ है– वाक्य से उत्पन्न वाक्यार्थ न।

वाचस्पति मिश्र के अनुसार जिन वचनों को युक्तता प्रमाण संगत और द, स्मृति आदि के अनुरूप नहीं है, उनको कहने वाले (बौद्ध भिक्षु आदि) आप्त नहीं माने जा सकते। संक्षेप में, सांख्याचार्यों के अनुसार आप्त व्यक्ति का उपदेश ही संदर्भगत विषय में शब्द प्रमाण है।

योग दर्शन में शब्द के लिए आगम शब्द का प्रयोग किया है। व्यास भाष्य (1.1.7) में लिखित है कि अपने बोध का सम्प्रेषण करने के लिए तत्वज्ञानी अर्थात् यथार्थद्रष्टा आप्त पुरूषों द्वारा शब्द के माध्यम से जो उपदेश किया जाता है, वह आगम प्रमाण है।

'मीमांसासूत्र' में प्रत्यक्ष के अतिरिक्त अन्य किसी प्रमाण का लक्षण निर्दृष्ट नहीं किया गया है। लेकिन परवर्ती आचार्यों ने अपने–अपने ढंग से शब्द–प्रमाण का लक्षण दिया है।

भाष्यकार शबरस्वामी के अनुसार वर्ण ही शब्द है। अकारादि वर्ण ही शब्द है।

कुमारिल भट्ट के अनुसार प्रकृत में उपयोगी होने के कारण जिसे शास्त्र कहा जाता है, वही शब्द प्रमाण है। कुमारिल के अनुसार 'लोक सिद्ध होने के कारण प्रत्यक्ष की तरह उसकी भी परीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है। नैयायिक शब्द बोध के प्रति ज्ञायमान पर अथवा पद–ज्ञान को कारण मानते हैं, परन्तु भाट्ट मीमांसक पदों के द्वारा पदार्थों का स्मरण होने पर जो वाक्यार्थ ज्ञन होता है, उसे ही शब्द प्रमाण कहते हैं। **नारायण भट्ट** ने भ ी इसी का समर्थन किया है।[11] **पार्थसारथी मिश्र** ने उपर्युक्त कथन में यह भी जोड़ा कि इस प्रमाण के द्वारा जो ज्ञान हो वह 'नवीन' होना चाहिए।

प्रभाकर मिश्र शब्द के स्वरूप के संदर्भ में भाष्यकार शबर के मत का ही समर्थन करते हैं। उनके अनुसार शब्द उन अक्षरों से भिन्न नहीं है जिनसे यह बना है। अक्षरों का प्रत्यक्ष श्रवणेन्द्रिय द्वारा होता है और वह क्रम जिनसे यह प्रत्यक्ष होता है, यह निर्णय करता है कि किन शब्दो ंका बोध हुआ? प्रत्येक अक्षर का प्रत्यक्ष ज्ञान प्रकट होते ही विलुप्त हो जाता है और पीछे एक संस्कार छोड़ जाता है। भिन्न–भिन्न अक्षरों द्वारा छोड़े हुए संस्कार अंतिम अक्षर के संस्कार के साथ संयुक्त होकर पूर्ण शब्द के विचार को उत्पन्न करते हैं, क्योंकि शब्द की क्षमता अक्षरों की भिन्न–भिन्न क्षमताओं से उत्पन्न होती है। इसलिए अक्षरों की क्षमताओं को शाब्दिक बोध का सीधा कारण बताया गया है। शब्दार्थ का बोध इन्द्रिय के द्वारा प्राप्त नहीं होता। इन्द्रियाँ

अक्षरों को प्रस्तुत करती हैं, जिनमें अक्षरों से बने हुए शब्द द्वारा प्रकट की गई वस्तु का बोध कराने वाली शक्ति रहती है। इस प्रकार प्रभाकर के मत में अक्षर शाब्दिक बोध के साधन है। शब्दों में अर्थद्योतन की नैसर्गिक शक्ति रहती है, जिसके द्वारा वे (शब्द) पदार्थों को प्रकट करते हैं।

प्रभाकर लौकिक या पौरूषेय शाब्दबोध को प्रमाणत्व प्रदान नही।[12] वे केवल वैदिक शब्द को ही प्रमाण मानते हैं। उनका अभिमत व लौकिक या पौरूषेय शब्द बोध का अन्तर्भाव अनुमान में हो जाता क्योकि पुरुष वचन केवल वक्ता पुरूष के अभिप्राय का अनुमान कराते स्वयं वाक्यार्थ का बोध नहीं कराते। पुरूष वचनों की बोधिकता शक्ति संचार शंका से कुंठित हो पाती है, क्योंकि अधिकतर पुरूषों के वचन होते हैं। अतः अवैदिक वाक्यों में प्रामाण्य को स्वीकार नहीं किया जा सकता।

किंतु **भाट्ट मीमांसक** लौकिक शब्द के प्रमाण्य के विषय में प्रभाकर की आलोचना करते हैं। उनके अनुसार वक्ता के बुद्धि की सिद्धि मान से किसी प्रकार से नहीं हो सकती। इसलिए असिद्ध वक्तृबुद्धि रूप से श्रोता में शब्दार्थ विषयक अनुमिति नहीं की जा सकती। वक्तृबुद्धि अर्थतत्त्व ये दोनों विशेष हैं। अतः इनका ग्रहण अनुमान द्वारा संभव है। इसलिए पोरूषेय वाक्य (लौकिक शब्द) को अनुमान में अन्तर्भूत किया जा सकता। वैदिक शब्द के समान ही लौकिक शब्द भी प्रामाण्य होता है।

अद्वैत वेदान्तियों ने 'यस्य' इत्यादि वारक्य से शब्द प्रमाण का लक्षण पाया है। उनके अनुसार जिसका पदार्थ संसर्ग, किसी भी अन्य प्रमाण बाधित नहीं होता ऐसे और वक्ता के तात्पर्य विषयीभूत, संसर्ग के बोधक वाक्य को ही शब्द प्रमाण कहते हैं। वाक्यजन्य ज्ञान मे आकांक्षा, योग्यता, सक्ति और तात्पर्य ज्ञान ये चार कारण होते हैं।[13] शब्द के लक्षण में अद्वैत वेदान्तानुसार 'वाक्यस्य' की आवश्यकता इसलिए होती है कि शब्द–प्रमाण के जिस अर्थ का ज्ञान होता है वही अर्थ अन्य प्रमाणों से भी सिद्ध होता है। इसलिए अन्य प्रमाणों को भी शब्द या आगम कहा जाता है। इसके नैवारणार्थ शब्द–लक्षण में 'वाक्यस्य' का समावेश किया गया है। अद्वैत वेदान्त द्वारा निर्धारित शब्द प्रमाण का यह लक्षण अधिक तार्किक है।

शब्द का प्रामाण्यः–

चार्वाक, बौद्ध तथा वैशेषिक शब्द के स्वतन्त्र प्रमाण का निषेध करते हैं। चार्वाक शब्द को पृथक् प्रमाण नहीं मानते हैं। उनके अनुसार शब्द किसी ऐसे अर्थ में प्रामाण्य नहीं होता है जो प्रत्यक्षसिद्ध न हो। इस कारण मूलभूत प्रमाण केवल प्रत्यक्ष है। चार्वाक शब्द को प्रत्यक्ष ग्रहीत अर्थ का अनुवादक मात्र मानते हैं। इसलिए उनका पृथक् प्रामाण्य असिद्ध है।

चार्वाक की शब्द विषयक व्याख्या समीचीन नहीं है। न्याय दार्शनिकों के अनुसार शब्द–बोध प्रत्यक्ष मूलक होने के कारण यथार्थ है। अपने प्रतिपक्षियों के मतों का खण्डन करने के लिए चार्वाक भी उनके शब्दों से उनके विचारों का ज्ञान प्राप्त करते हैं। इसलिए चार्वाक मत में भी शब्द प्रमाण मान्य हो जाता है।

बौद्ध दार्शनिक शब्द प्रमाण का अन्तर्भाव अनुमान में करते हैं। उनके अनुसार दो ही प्रकार की वस्तुएं हैं– विशेष और सामान्य। स्वलक्षण विशेष। इसका ज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण से होता है। सामान्य बुद्धि द्वारा कल्पित है। अतः उसका ज्ञान अनुमान से होता है। इन दोनों के अतिरिक्त कोई तीसरा श्रेय नहीं है। इसलिए किसी तीसरे प्रमाण को मानने की आवश्यकता नहीं है। **दिङ्नाग** आदि बौद्ध दार्शनिकों का कहना है कि सम्पूर्ण वचनों द्वारा वक्ता की विवक्षा का अनुमान होता है। इसलिए शब्द अनुमान से पृथक् सिद्ध नहीं होता है।

बौद्धों की भांति **वैशेषिक** भी शब्द के पृथक् प्रामाण्य का निषेध करते हैं। लेकिन दोनों में प्रमुख अंतर यह है कि बौद्ध शब्द का सम्बन्ध वस्तुरिच्छा रूप विविक्षा से मानकर उसे अनपुमान से पृथक् मानते हैं, जबकि वैशेषिक शब्द का साहचर्य सम्बन्ध स्वीकार करते हुए उसे अनुमान में अन्तर्भूत कर देते हैं। वैशेषिकों के अनुसार जिस प्रकार अनुमान में ज्ञात लिंग के आधार पर अज्ञात लिंगी का ज्ञान प्राप्त होता है, उसी प्रकार शब्द प्रमाण में भी प्रत्यक्ष शब्द के माध्यम से अप्रत्यक्ष वस्तु का ज्ञान प्राप्त किया जाता है। यहाँ शब्द लिंग और वस्त्र लिंगी है। जिस प्रकार अनुमान में लिंग और लिंगी के बीच व्याप्ति सम्बन्ध आवश्यक है, उसी प्रकार शब्द ज्ञान के लिए वाचक और वस्तु के बीच व्याप्ति सम्बन्ध का होना आवश्यक है। इस प्रकार शब्द–ज्ञान और अनुमान–ज्ञान प्राप्त करने की विधि समान होने के कारण शब्द अनुमान में अन्तर्भूत हो जाता है।

शब्द प्रमाण्यवादी सभी दार्शनिक शब्द प्रमाण का अनुमान में अन्तर्भाव किये जाने का विरोध करते हैं। **बौद्धों** के विरूद्ध कुमारिल भट्ट का कहना है कि शब्द का अन्तर्भाव अनुमान में करने पर लिंग–दर्शन के अभाव में स्वर्गादि अनेक अर्थों की सिद्धि नहीं हो सकेगी, क्योंकि इनकी सिद्धि में कोई लिंग द्रष्टव्य नहीं है। अतः इनकी सिद्धि केवल शब्द प्रमाण से ही हो सकती है। **अद्वैत वेदान्तियों** का भी यही मत है।

कुमारिल बौद्ध मत का विरोध करते हुए यह भी कहते हैं कि शब्द का अनुमान में अन्तर्भाव इसलिए भी नहीं किया जा सकता कि विषयभेद के आधार पर दोनों पृथक्–पृथक् है। धर्म विशिष्ट धर्मी स्वरूप 'विशेष' ही अनुमान का विषय कहा गया है।[14] जबकि शब्द प्रमाण का विषय सामान्य होता है। पुनश्च, अनुमान प्रमाण से विशेष का ज्ञान पहले होता है और विशेषण का बाद में, जबकि शब्द प्रमाण स्थल में इसके विपरीत होता है।

इस कारण भी दोनों की स्वतंत्रता सिद्ध होती है।[15] तीसरी बात यह है कि पक्षता का अभाव होने से भी शब्द का अनुमान से अभेद नहीं हो सकता।

वैशेशिकों के उपर्युक्त मत का खण्डन करते हुए न्याय दार्शनिक कहते हैं कि वैशेषिक मत व्याप्ति के गलत अर्थ पर आधारित है। अनुमान में लिंग और लिंगी के बीच स्थित व्याप्ति सम्बन्ध वास्तविक या स्वाभाविक सहचार का सम्बन्ध है। जैसे, धूम एवं वहिन का सम्बन्ध। किंतु शब्द ज्ञान शब्द (वाचक) के मध्य स्वाभाविक सहयोग का सम्बन्ध नहीं पाया जाता। जहाँ–जहाँ शब्द रहते हैं वहाँ इनसे सूचित पदार्थों का रहना आवश्यक नहीं। इससे सिद्ध होता है कि शब्द इनसे सूचित अर्थ के बीच स्वाभाविक सहचार का सम्बन्ध नहीं रहता। इसलिए शब्द ज्ञान में व्याप्ति का अभाव रहता है, जबकि अनुमिति के लिए व्याप्ति का होना आवश्यक है। **जैनाचार्य गोविजय** का भी कहना है कि आगम व्र्त्राप्ति–निरपेक्ष होने के कारण अनुमान में अन्तर्भूत नहीं होता।[16] **सांख्य दर्शन** के ग्रन्थ **'सांख्यतत्वकौमुदी' 'माठरवृत्ति'** में इसी मत का समर्थन किया गया है।

धर्मराजाध्वरीन्द्र का कहना है कि शब्द प्रमाण का पूर्व ज्ञान आकांक्षा, योग्यता, आसक्ति और तात्पर्यज्ञान की सहायता से होता है।[17] और वहाँ अनुमान का अनुभव हमें नहीं होता। इससे भी अनुमान प्रामाण से पृथक् शब्द प्रमाण का अस्तित्व सिद्ध होता है।

शब्द प्रमाण के स्वरूप, प्रामाण्य व इससे सम्बन्धित अन्य पक्षों पर भले ही शब्द प्रमाणवादी दार्शनिकों में मतभेद हो, किंतु इसके महत्व को सभी शब्द परमाण को मानने वाले दार्शनिक स्वीकार करते हैं। इसका सबसे बड़ा प्रमाण इसको पृथक प्रमाण के रूप में मान्यता प्रदान करना है। न्याय दर्शन में अन्य प्रमाणों के समान ही शब्द प्रमाण को महत्व दिया गया है। इसका कारण यह है कि अन्य प्रमाणों की तरह ही शब्द प्रमाण से भी प्रमेय की सिद्धि होती है। अद्वैत वेदान्त दर्शन में शब्द प्रमाण के महत्व को प्रतिपादित करते हुए कहा गया है कि श्रुति वाक्य ही हमें ऐसा ज्ञान प्रदान करते हैं जो इन्द्रियों अथवा विचारशील व्यक्तियों द्वारा प्राप्त नहीं हो सकता। आचार्य शंकर ने कहा है कि धर्म और अधर्म सम्बन्धी विषयों पर श्रुति ही एकमात्र प्रमाण है। शब्द प्रमाण की यह उपयोगिता स्वतः ही उसके प्रमाण्य को सिद्ध कर देती है।

संदर्भ–

1. तर्क भाषा, मिश्र; केशव, हिन्दी व्याख्या–शुक्ल; बदरीनाथ मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, 1968, पृ0 149.
2. तत्वार्थधिगमसूत्र, 1.35, उमास्वामी, ज्ञानपीठ, वाराणसी, 1949

3. जैन तर्कभाषा, जैन; महेन्द्र कुमार; सिन्धी जैन ग्रन्थमाला, अहमदाबाद 1938, पृ0 19.

4. तर्कसंग्रह, पृ0 73.1

5. आप्तोपदेशः शब्दः— न्यायसूत्र 1/1/17.

6. प्रयोगहेतुभूतार्यत्वज्ञानजन्यः शब्दः— तत्वचिंतामणि; शब्द खण्ड।

7. आप्तवाक्यं शब्दः— तर्कभाषा, पृ0 149.1.

8. आप्तवाक्यंशब्दः— तर्कसंग्रह, पृ0 182.

9. तर्कभाषा, मिश्र; केशव : चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी; 1953, पृ0 122.

10. सांख्यकारिका; 5, चौखम्भ प्रकाशन, वाराणसी, 1963.

11. मानमेयोदय, भट्ट; नारायण, थियोसाफिकल पब्लिशिंग हाउस, अड्यार, मद्रास 1932, पृ0 95.

12. प्रकरणपंचिका, मिश्र; शालिकनाथ, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय मुद्रणालय, काशी, 1962, पृ0 88.

13. वेदान्तपरिभाषा, धर्मराजाध्वरीन्द्र, व्याख्या मुसलगाँवकर, श्री गजानन शास्त्री, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1983, पृ0 187—88.

14. श्लोक वार्तिक, अनु0— 27, भट्ट कुमारिल, मद्रास विश्वविद्यालय प्रकाशन, मद्रास, 1940.

15. श्लोक वार्तिक।

16. जैन तर्कभाषा; जैन, महेन्द्र कुमार, सिंधी जैन ग्रन्थमाला, अहमदाबाद, 1938, पृ0 19.

17. वेदान्त परिभाषा, धर्मराजाध्वरीन्द्र, व्याख्या—मुसलगाँवकर, श्रीगजानन शास्त्री, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1983, पृ0 189.

——